अध्याय–1

प्राचीन भारतीय मुद्रा प्रणाली के इतिहास लेखन का संक्षिप्त विवरण, स्रोत सामग्री एवं अध्ययन पद्धति

प्राचीन भारतीय मुद्रा प्रणाली का एक लम्बा इतिहास है जिसके दौरान इसकी अपनी विशेषताएं राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के बीच विकसित हुईं। इस विकास को मूल प्रेरणा यदि आर्थिक जीवन के उस मोड़ पर मिली जिसे "द्वितीय नगरीकरण" कहा जाता है (क्योंकि सौन्धव सभ्यता का प्रथम भारतीय नगरीकरण सिक्कों से रहित था) तो विनियम के मौद्रिक स्वरूप, मुद्रा निर्माण, तथा मुद्राओं पर अंकित चिह्नों एवं आकृतियों की निर्माण परम्परा के विकास को समय–समय पर आने वाली विदेशी पद्धतियों एवं परम्पराओं में सन्दर्भित एवं प्रभावित किया।

वैदिक काल में अतिरिक्त खाद्य उत्पादन एवं उसका संग्रह दीर्घ काल तक कर पाना सम्भव नहीं था और स्वर्ण जैसी बहुमूल्य धातुयें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं थीं। यहाँ तक कि शतपत ब्राह्मण में सोने को भी अमृत कहा गया है[1] यही बात तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी कही गयी है[2]। इसलिए पशुओं का झुण्ड ही आर्यों का धन था। धीरे–धीरे जब वस्तुविनिमय प्रासंगिक नहीं रह गया तो गायें विनिमय का माध्यम बन गयीं। ऋग्वेद के एक मंत्र में इन्द्र की मूर्ति का मूल्य दस गायों के बराबर बताया गया है[3], यथा – "क इमं दशाभिर्मय इन्द्रं क्रीणति धेनुभिः"। किसी सामान की मूल्य

सापेक्षता आधी गाय के बराबर हो तो उसे अदा न किया जा सकना, जानवरों के झुण्ड के संग्रह एवं रक्षण में असुविधायें, पशु विनिमय से बाह्य व्यापार का प्रारम्भ न हो पाना आदि ऐसी असुविधायें थीं जो पशु विनिमय के स्थान पर धातु विनियम को लाने की उत्प्रेरक बनीं। बहुमूल्य धातुओं में सोना ही वैदिक युग में प्रचलित था यद्यपि उत्तर कालीन कुछ संहिताओं में चांदी का भी सन्दर्भ प्राप्त होता है। ऋग्वेद में कई प्रकार के आभूषणों का वर्णन मिलता है जिनका उपयोग विनिमय के लिए होता था जैसे– निष्क, खदि, रुक्म, हिरण्यपिण्ड, कर्णशोभन आदि[4]। अथर्ववेद में एक दयालु राजा के द्वारा दस हार, 300 घोड़े, 10,000 गायें और 100 निष्क उपहार देने का उल्लेख है[5]। उल्लेखनीय है कि वैदिक कवियों ने कहीं भी 10 खदि या रुक्म या कर्णशोभन जो आभूषण थे (सिक्के नहीं) का उपहार के रुप में उल्लेख नहीं किया है। जब कवि 10 हिरण्यपिण्ड या 100 निष्क के लिये प्रार्थना करते थे तो वे स्पष्ट रुप से एक निश्चित आकार, वजन या मूल्य की दस या 100 वस्तुओं की माँग करते थे। अतः इनका आभूषण मात्र होना सन्देहास्पद प्रतीत होता है। यद्यपि फिर भी निष्क को नियमित मुद्रा के रुप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है[6]।

उत्तर वैदिक काल में सोने के अलावा चाँदी का भी प्रयोग होने लगा था। पचंविश ब्राह्मण में ब्रात्यों, जो अनार्य श्रेणी के लोग थे, के आभूषण के रुप में चाँदी के निष्क का उल्लेख केवल एक बार हुआ है। गोपथ ब्राह्मण में एक प्रसंग प्राप्त होता है जिसमें कुरुपांचाल के विद्वान उद्द्वालक अरूणि अपने ध्वज के साथ एक "निष्क" लेकर सम्पूर्ण देश में भ्रमण कर रहे थे और उनका उद्घोष था कि जो उन्हें शास्त्रार्थ में पराजित करेगा वह "निष्क" उसे सौप देंगें। डॉ० अल्टेकर ने अपना

निष्कर्ष दिया है कि यह निष्क या तो छोटे स्वर्ण पदक के हार थे या बड़े स्वर्ण पदकों के हार। इस युग के लोग शतमान नामक एक दूसरे स्वर्ण खण्ड से भी परिचित थे जो परवर्ती युगीन सिक्कों की तरह गोल था। टीकाकार कर्क के अनुसार इसका भार 100 कृष्णल या 175 ग्रेन था। निष्क, सुवर्ण, शतमान, का उल्लेख आभूषण के रुप में नहीं वरन पुरोहितों या विद्वानों को पारिश्रमिक या उपहार के रुप में दिये जाने का प्रमाण व उद्धरण हैं जो विभिन्न अनुच्छेदों में पाये जाते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि इस युग में स्वर्ण मुद्रा जैसी कोई वस्तु प्रचलन में थी भले वह नियमित सिक्कें के रुप में नहीं थी। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि राजसूय यज्ञ में अपनी सेवा के बदले रथ दौड़ के प्रत्येक प्रतिभागी को एक "कृष्णल" (रत्ती) दिया जाता है।[7] वस्तुतः कृष्णल भार की मात्रा को इंगित करता था न कि सिक्के के नाम को। निष्कर्षतः निष्क, सुवर्ण, शतमान भी एक सुनिश्चित भार के पारिभाषिक शब्द थे, के साथ–साथ स्वर्ण शलाका भी प्रचलित थी जिनसे समयानुसार छोट–छोटे टुकड़े माप और भार के अनुसार निकाले जाते थे। सामान्य व्यवहार में प्रयोग हेतु सोने की छड़ें ही समाज में प्रचलित थी, जबकि स्वर्ण खण्ड राजाओं व विशिष्ट लोगों के लिए ही व्यवहृत थे। वैदिक युग तक रजत या ताम्र मुद्रा के प्रयोग का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

वैदिक कालीन निष्क, शतमान, सुवर्ण जैसे आभूषण परवर्ती काल में अपना स्वरूप बदल रहे थे जिससे विनिमय पर आधारित निर्वाह अर्थव्यस्था में महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। त्रिपिटक जातक व कात्यायन ने शतमान को स्वर्ण मुद्रा के रुप में उल्लिखित किया है। इसका भार 100 रत्ती या 175 ग्रेन था। जातक,

त्रिपिटक, श्रोतसूत्र तथा अष्टाध्यायी में रजत मुद्रा का भी सन्दर्भ प्राप्त होता है। इसलिए 500 ई० पूर्व इसका प्रचलन एक सामान्य बात मानी जा सकती है।[8] ऐसे में छठी शताब्दी ईसा पूर्व आहत सिक्कों के बनने से मौद्रिक अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ। आहत सिक्के भी चाँदी एवं स्वर्ण खण्ड ही थे जिनकों मुद्रा का स्वरूप प्रदान किया गया और इन पर कुछ प्रतीक चिह्न बनाये जाने लगे थे। विनयपिटक में अनाथपिण्डक द्वारा जेतवन के सम्पूर्ण क्षेत्र को करोड़ों स्वर्ण सिक्कों से ढके होने का वर्णन सन्दर्भित है। पाणिनि के अष्टाध्यायी में "तेनक्रीतम" के उल्लेख के अतिरिक्त नैष्किकम, द्विनैष्किकम, त्रिनैष्किकम अर्थात किसी वस्तु को एक, दो या तीन निष्क में खरीदने का संकेत है।[9] कुरूजातक में एक ऐसे विद्यार्थी को 1000 कार्षापण देने का उल्लेख है। बौद्ध ग्रन्थों में कार्षापण को ही "कहापन" नाम से सन्दर्भित किया गया है। लगभग चौथी शताब्दी ईसा पूर्व की रचना "अर्थशास्त्र" में स्वर्ण, धरण, शतमान, पण, माषक तथा काकिनी आदि विभिन्न सिक्कों का नाम सन्दर्भित है। "पण" भी एक सिक्का था जिसका उल्लेख चाणक्य ने किया है[10]। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि " लक्ष्णाध्यक्ष रुपरुप अर्थात चाँदी की सिक्कों के निर्माण में चार भाग ताँबा तथा 1/16 भाग तीक्ष्ण, त्रपु, सीस, अंजन आदि धातुओं में से किसी एक का समिश्रण करके बनायेगा। एक पण, आधा पण, चौथाई पण तथा 1/8 पण इकाई में सिक्कों का निर्माण किया जायेगा। ताम्र रूप अथवा ताँबे के सिक्कों में चारो भाग मिश्रित धातुओं का होगा और उनमें माषक, अर्द्धमाषक, काकिणी, एवं अर्द्धकाकिणी इकाईयों का निर्माण किया जायेगा। रुप दर्शक विनिमय के माध्यम तथा लीगल टेण्डर के रुप में कोष प्रवेश्य मुद्रा का नियमन करेगा– सिक्कों पर लिया जाने वाला आदेय 8ः होगा

और इसे रुपिक कहा जायेगा।[11] रजत एवं ताम्र मुद्रायें श्रोतसूत्र, त्रिपिटक, पाणिनि और कौटिल्य के समय तक स्थापित हो चुकी थीं। तक्षशिला से प्राप्त होने वाली आहत मुद्रा निधि भी इसी तथ्य का समर्थन करती है। इस प्रकार यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि भारत में रजत व ताम्र मुद्रायें नामों की विभिन्नता लिए हुए लगभग छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक भली भाँति प्रतिष्ठित हो चुकी थीं लेकिन इनकी प्राचीनता को लगभग 800 ईसा पूर्व पहले ले जाना तर्कसंगत नहीं होगा।

भारत के प्रचीनतम सिक्कों का नामकरण उनमें प्रयुक्त तकनीकि के आधार पर किया गया है। इसीलिए इन सिक्कों को आहत या पचंमार्क कहा जाता है। बौद्ध साहित्य एवं संस्कृत साहित्य में इन्हें 'पुराण' या 'धरण' और ब्राह्मण ग्रन्थों में इनको शतमान कहा गया है। इन सिक्कों पर तिथि या अन्य कोई लेखाकंन का प्राप्त न होना उस भ्रामक स्थिति को जन्म देता है जिसमें यह निष्कर्ष निकालना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है कि किस व्यक्ति, संस्था अथवा राजवंश ने इन सिक्कों को जारी किया। मौर्यकाल से पहले भारत में किसी केन्द्रीकृत साम्राज्य का सर्वथा अभाव था। राष्ट्र की समृद्धि कृषि एवं व्यापार पर निर्भर थी। प्राचीन भारत में व्यापार श्रेणियों अथवा निगमों के अधीनस्थ था। वैशाली, भीटा, राजघाट से प्राप्त मोहरों पर श्रेणी या नैगमसभा का उल्लेख है जिससे यह स्पष्ट होता है कि श्रेणियों व निगम सभायें भी सिक्कों को जारी करती थीं। आहत सिक्कों पर अंकित किसी न किसी चिह्न से उनका सम्बन्ध अवश्य था जिन श्रेणियों ने उनका निर्माण कराया था। "समन्तपासादिका में बुद्धघोष ने निगम द्वारा आहत सिक्के चलाये जाने का उल्लेख किया है। स्मिथ एवं रैप्सन भी यह स्वीकार करते है कि राजकीय आदेश प्राप्त कर

लेने पर श्रेणियाँ व स्वर्णकार भी सिक्के निर्मित करते थे। इसी प्रकार डी०सी० सरकार भी राज्य के साथ–साथ श्रेणियों तथा स्वर्णकारों को भी मुद्रा प्रचलित कराने का श्रेय देते हैं। तक्षशिला (भीरटीला), भागलपुर, पटना, कलिंग, चिरैयाकोट, कौशाम्बी, काशी, उदयपुर, शारंगपुर, बेसनगर, उज्जैन, कोल्हापुर, त्रिचनापल्ली आदि स्थलों से प्राप्त आहत मुद्रायें अपने प्रसार क्षेत्र दिग्दर्शित करती हैं।[12] इस प्रकार पश्चिमोत्तर भारत गंगा का मैदान, मध्य भारत एवं दक्षिण भारत आदि सभी क्षेत्रों में आहत मुद्राओं का साम्राज्य था। आहत सिक्कों के अतिरिक्त साँचो में ढली हुई लेखरहित ताम्र मुद्राओं का भी प्रचलन था। कुमरहार एवं हस्तिनापुर के उत्खनन क्रम में उपलब्ध इन सिक्कों का समय छठी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर पाँचवी शताब्दीं ईसा पूर्व ठहरता है। कौशाम्बी के उत्खखन क्रम से ये सिक्के ैच्च 5 सेैच्च 10 तक मिले हैं जिसका समय 1000 ईसा पूर्व से लेकर 900 ईसा पूर्व तक निश्चित किया गया है। लेकिन अधिकांश उत्खनित स्थानों पर उपलब्ध आहत मुद्राओं की प्राचीनता समर्थित होती है।

मौर्य वंश के खण्डहरों पर बना शुंग साम्राज्य दीर्घकाल तक स्थायी न रह सका। शुंग साम्राज्य का पतन होते ही स्थान–स्थान पर अनेक जनपदों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। समुद्रगुप्त की दिग्विजय के पूर्व तक स्वतन्त्र जनपदों का जनपदीय शासन अस्तित्व में बना रहा। इस सुदीर्घ शासन परम्परा में अनेकों जनपदों के शासकों ने अपनी–अपनी मुद्रायें भी चलायीं। तक्षशिला, कौशाम्बी, मथुरा, कोशल, पांचाल, एरण, उज्जैन, विदिशा, तथा, महिष्मती आदि ऐसे प्रमुख जनपद थे। वी० ए० स्मिथ, जान एलन जैसे विद्वानों ने क्षेत्रीय आधार पर जनपदीय सिक्कों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। जनरल कनिंघम ने अपने "कैटलॉग आफ एन्शियन्ट

इन्डियन क्वाइन्स" में जनपदीय सिक्कों के वर्गीकरण का आधार उनका निर्माण एवं क्षेत्रीयता बताया है। यद्यपि इन जनपदीय सिक्कों में केवल ताम्र मुद्राओं की ही बहुलता है[13]। यह मुद्रायें लेखरहित एवं लेखयुक्त दोनों ही प्रकार की थीं।

कोशल से प्राप्त सिक्कों में "कुक्कुट" और "नंदी" प्रतीक चिह्न को अंकित करने वाले ज्यादातर सिक्के प्राप्त हुए हैं, इन सिक्कों पर नामित राजा के नाम के आगे "मित्र" शब्द है। कनिंघम का कहना है कि "मित्र" नामधारी पांचाल शासकों का साम्राज्य विस्तार अयोध्या तक था। कोशल जनपद की मुद्राओं का प्रचलन 200 ईसा पूर्व तक निर्धारित किया गया है। कौशाम्बी से प्राप्त सिक्कों पर "वृष" मुख्य प्रतीक के रूप में अंकित है। इसके अतिरिक्त घेरे में वृक्ष, नंदी, ब्राह्मी लिपि में शासक का नाम आदि का अंकन मिलता है। कनिंघम का मानना है कि ज्येष्ठमित्र, देवमित्र, अवश्घोष वरूणमित्र आदि शासकों के नाम का उल्लेख यहाँ के सिक्कों पर प्राप्त हुआ है। वरुणमित्र का शिलालेख भी कौशाम्बी से प्राप्त हुआ है। कौशाम्बी से "मघ" नामधारी सिक्के भी पुरातात्विक उत्खननों से प्राप्त हो चुके हैं। पांचाल जनपद के उत्तरी भाग की राजधानी अहिच्छत्र थी, यहाँ से बंगपाल नामक शासक की एक ताम्र मुद्रा मिली है। पभोसा अभिलेख में भी बंगपाल नामक शासक का उल्लेख हुआ है।[14] अल्टेकर ने पभोसा अभिलेख में उल्लिखित बंगपाल तथा अहिच्छत्र के सिक्कों में सन्दर्भित बंगपाल को एक मानते हुए यह निष्कर्ष दिया है कि वत्स तथा पांचाल जनपद एक ही वंश के शासनाधीन थे। अहिच्छत्र से प्राप्त सिक्कों पर ब्राह्मी लिपि में शासक का नाम सूर्य, अग्नि, वृक्ष, शिवलिंग, नन्दिपद, शिव, इन्द्र आदि चिह्नों का अकंन मिलता है। पांचाल जनपद से प्राप्त सिक्के ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से लेकर लगभग चौथी शताब्दी ई०

तक प्रचलन में थे।[15] शुंग साम्राज्य के पतन के बाद मथुरा क्षेत्र के सामन्त स्वयं को स्वतन्त्र घोषित करके अपने–अपने सिक्के जारी किये। इनके द्वारा जारी अधिकांश सिक्के ताम्र निर्मित हैं। इन सिक्कों के पुरोभाग पर मानव आकृति तथा शासक का नामांकन तथा पृष्ठभाग पर गज, अश्व, विन्दु समूह, वृक्ष आदि का अंकन प्राप्त होता है। मथुरा से प्राप्त कुछ सिक्कों पर शोडास, हगान आदि विदेशी शासको के नाम प्राप्त होते हैं। जान एलन के "कैटलॉग आफ एन्शियन्ट इन्डियन क्वाइन्स इन द ब्रिटिश म्यूजियम" में सुरक्षित कुछ अन्य प्रकार के सिक्कों को भी मथुरा के सिक्के होने की बात कही है।[16] एरण, विदिशा, महिष्मती, उज्जैन आदि से प्राप्त सिक्कों पर "नगर नाम" का अंकन है जैसे– "महिसति वेदिस"। इन सिक्कों की लेखन योजना ब्राह्मी लिपि एवं प्राकृत भाषा में है। उज्जयिनी प्रतीक चिह्नों वाले अनेक सिक्के इस क्षेत्र से प्राप्त हुए हैं। वल्मक, हनुगम, दासस, प्रभुद, सामन्तदेव, महु, सौम, नामांकन वाले सिक्के भी मिले हैं। इन नामों को शकों का होने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। पद्मावती से शिवगुप्त, विशाखदेव, अमितसेन आदि राजाओं के सिक्के मिले हैं, सम्भवतः यह शासक प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में शासन करते थे। इनके बाद यहाँ से अनेक नाग शासकों के सिक्के प्राप्त होने लगते हैं, जिन पर वृषभ और मयूरांकन की अधिकता है। गंधार से प्राप्त ताम्रखण्डों पर "नेकम" का अंकन मिलता है जो खरोष्ठी एवं ब्राह्मी लिपियों में है। कुछ विद्वानों ने नेकम शब्द के आधार पर इन्हें निगमों द्वारा प्रचलित व्यापारिक मुद्रा की कोटि में रखा है। डॉ० पी०एल० गुप्ता ने इन्हे "व्यापारिक टोकन" की संज्ञा दी है। प्रमुख व्यापारिक केन्द्र रह चुका तक्षशिला पर ईरानी, युनानी, मौर्यवंशी, ग्रीक, शक, पार्थियन व कुषाण आदि

राजवंशो का शासन था, इन सभी राजवंशो द्वारा प्रचलित की गयी मुद्रायें तक्षशिला से प्राप्त हुई हैं। वी०ए० स्मिथ 'ठप्पाविधि' का प्रारम्भ 450 ईसा पूर्व से मानते है, ठप्पाविधि का प्रयोग सर्वप्रथम तक्षशिला से ही प्रारम्भ हुआ। "भीर टीले" के उत्खनन से रजत शलाका को काट कर तैयार किये गये भारतीय आहत सिक्के प्राप्त हुए हैं। एलन के अनुसार यह वही सिक्के थे जिन्हें आम्भि ने सिकन्दर को भेंट के रूप में प्रदान किये थे। इन सिक्कों पर तक्षशिला चिह्न अंकित है। रज्जुवुल ने तक्षशिला क्षेत्र में सीसे के सिक्कों का प्रचलन किया था जिसके पृष्ठतल पर 'हेलाक्ल' तथा पुरो भाग पर 'शेर' का अंकन है। इसका अधिकार क्षेत्र पूर्वी पंजाब से मथुरा तक था।[17] पंजाब क्षेत्र में यौधेय, आर्जुनायन, कुणिन्द जैसे जनपदीय गणराज्यों ने अपनी–अपनी ताम्र व रजत मुद्रायें प्रचलित कीं, जिन पर ब्राह्मी व खरोष्ठी दोनों लिपियों का अंकन है। इन गणराज्यों की मुद्राओं की अपनी विशेषतायें हैं, जैसे गण का नाम, शासक का नाम, उस गण के अराध्य देवता का नाम तथा किसी आदर्श वाक्य का अकंन आदि। यौधेयों के सिक्कों का उल्लेख पाणिनि द्वारा किया गया है।[18] इनकी प्राचीनतम मुद्रायें प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व की हैं। महाभारत के अनुसार 'बहुधान्यक प्रदेश' (हरियाणा) का 'रोहतक' नामक स्थान यौधेयों की राजधानी था।[19] क्योंकि इनकी मुद्राओं पर "बहुधान्यक यौधेयानाम" का लेखांकन किया गया है। डी०सी० सरकार ने "ज्याग्राफी आफ एन्शियन्ट एण्ड मिडिवल इण्डिया" में पुराणों का उद्धरण दिया है जिसमें यौधेयों का उल्लेख पांचाल, कुरू, मध्यदेश, मत्स्य आदि जनो के साथ होता है।[20] कनिंघम स्मिथ, रैप्सन के अनुसार यौधयों की मुद्रायें सहारनपुर से मुल्तान तक के क्षेत्रों से प्राप्त हुई हैं जिन पर "यौधेय गणस्य जयः" लेख अंकित है। यह ताम्र मुद्रायें चतुर्थ

शताब्दी ई० की हैं। गुप्तों के उदय काल में यह लोग "जोहियाबाड़" क्षेत्र पर शासन कर रहे थे। कनिंघम एवं स्मिथ ने इस स्थान की पहचान सतलज नदी के तटवर्ती प्रान्त 'भागलपुर' से की है। वराहमिहिर की वृहत संहिता में इस गणराज्य के लोगों का निवास स्थान उत्तराखण्ड बताया गया है। स्मिथ ने मथुरा से प्राप्त कुछ मुद्राओं का सम्बन्ध आर्जुनायन गणराज्य से स्थापित किया है। कुणिन्द गण के लोग जो यमुना व सतलज नदियों के मध्य शासन कर रहे थे, की मुद्राओं पर 'कुणिन्द' व "कुणिन्द गण" लेख प्राप्त होता है।[21] इस गणराज्य की मुद्रायें काँगड़ा, अम्बाला व सहारनपुर से मिली हैं जिन पर ब्राह्मी व खरोष्ठी दोनों लिपियों का अंकन है। यहाँ से प्राप्त मुद्राओं पर ब्राह्मी में "अमोघमृतस महरजस राज्ञ कुणदस" लेख उत्कीर्ण है। जबकि खरोष्ठी लिपि में "राज्ञो कुणिदस अमोघभूतिस महरजस" अंकित है। औदुम्बर गण का उल्लेख पाणिनि की अष्ठाध्यायी, वृहतसंहिता, (वराहमिहिर) पुराण आदि में हुआ है। इनकी मुद्राओं पर "औदुम्बर" नामांकित है। जो उत्तर में रावी से लेकर पश्चिम में काँगड़ा तक के क्षेत्र में प्राप्त हुई हैं। यहाँ की कुछ मुद्राओं पर खरोष्ठी में "महादेवस राओं धरघोषस औदुम्बरिस" का अंकन मिलता है। पंजाब के होशियारपुर से इनके कुछ सिक्के मिले हैं जो ब्रिटिश संग्रहालय में रखे गये हैं। औदुम्बर गण की उन दो मुद्राओं का उल्लेख आवश्यक है जो क्रमशः ब्रिटिश संग्रहालय एवं लाहौर संग्रहालय में रखी गयी हैं। प्रथम को एलन ने अपने "कैटलॉग" मे प्रकाशित किया है तथा दूसरी को ह्वाइटहेड ने "कैटलॉग ऑफ कवाइन्स इन द पंजाब म्यूजियम" में प्रकाशित किया है। उपरोक्त दोनों मुद्राओं पर एक दाढ़ीयुक्त पुरुष का अंकन मिलता है। उल्लेखनीय है कि हरवंश पुराण[22] व अन्य पुराणों में[23] अदुम्बरों को विश्वामित्र का

वंशज बताया गया है। इस प्रकार पुराणों की उपरोक्त उद्घोषणा को मौद्रिक साक्ष्य भी अपना समर्थन प्रदान करते हैं। राजस्थान के जयपुर से मालवगण के बहुतायत सिक्के मिले हैं, जिन पर "मालव गण जयः" तथा "मालवानां जयः" लेख अंकित है। डॉ० मजूमदार ने गुप्तवाकाटक ऐज में लिखा है कि समुद्रगुप्त के समय मालवगण के लोग मेवाड़ तथा दक्षिण पूर्व राजस्थान के कुछ क्षेत्रों पर शासन कर रहे थे।[24] कुछ लेख रहित मुद्राओं को भी उनके शिल्प विधि एवं लेखाकार योजना के आधार पर स्मिथ महोदय ने मालवगण की मुद्राओं की सूची में स्थान देने का आग्रह किया है। इन मुद्राओं का प्रचलन लगभग दूसरी शबाब्दी ईसा पूर्व से लेकर चतुर्थ शताब्दी ई० के उत्तरवर्ती चरण तक माना जाता है।[25]

सातवाहनों के समय शक क्षत्रप नहपान के सिक्के नासिक जिले के "जोगलथम्बी मुद्रा निधि" से प्राप्त हुए हैं। लेकिन सातवाहन नरेश गौतमीपुत्र शातकर्णि ने जब नाहपान को पराजित किया तो उसके सिक्कों को अपने अनुसार पुनरांकित करवाया।[26] उन सिक्कों के पुरोभाग पर "मेरू चिह्न" और "रञो गौतमीपुतस सिरिसात कणिस" लेख तथा पृष्ठतल पर उज्जयिनी लांछन चित्रांकित है। ये सिक्के द्विभाषिक कहे जा सकते हैं क्योंकि इन पर यवन परम्परा के समान जीवन्त मुण्ड का अंकन और नाम ब्राह्मी लिपि एवं प्राकृत भाषा में है। पृष्ठतल पर भी पुरोभाग के समान तमिल भाषा में लेख अंकित है। पुलमावि के सिक्कों पर उज्जयिनी चिह्न[27] तथा चोल मण्डलतट में प्रचलित दो मस्तूलों वाले जहाज[28] का चित्रांकन इसके विस्तृत साम्राज्य का सम्बोधक माना जा सकता है। यज्ञश्रीशातकर्णि के सिक्के चन्द्रपुर, कृष्णा, गोदावरी, चाँदा (म०प्र०), बरार, उत्तरी कोंकण, बड़ौदा तथा सौराष्ट्र से प्राप्त हुए हैं।

सोपारा से "यज्ञ" नाम के कुछ रजत सिक्के मिले हैं। जो शैली, आकार तथा भार की दृष्टि से रूद्रदामन के साधारण रजत सिक्कों से समानता रखते हैं। इस मुद्रा साक्ष्य के सन्दर्भ में डी० वी० वी० मिराशी, स्मिथ, डी० सी० सरकार, सुधाकर चट्टोपाध्याय, नीलकण्ठशास्त्री जैसे विद्वानों का कहना है कि यज्ञश्री ने रूद्रदामन के उत्तराधिकारियों से कुछ क्षेत्र जीत लिया था और उन्ही के सिक्कों के आदर्श पर अपने सिक्के चलाये। सुधाकर चट्टोपध्याय यज्ञश्री के उस सिक्के का साक्ष्य देते हुए, जिस पर अश्व का अंकन है, कहते हैं कि यज्ञश्री ने अश्वमेघ यज्ञ भी किया था। इसी प्रकार नीलकण्ठशास्त्री तथा स्मिथ यज्ञश्री के कोरोमण्डलतट से प्राप्त जहाज, शंख, मत्स्य आदि अंकन वाले सिक्के के आधार पर यह निष्कर्ष देते हैं कि उसका साम्राज्य समुद्रतट तक विस्तृत था। शिवश्री[29] तथा चन्द्रश्री[30] जैसे अंतिम सातवाहन नरेशों के सिक्के केवल आन्ध्रप्रदेश से ही मिलते हैं। जिसके आधार पर अल्टेकर का मानना है कि सातवाहनों के पतन के समय उनका शासन आन्ध्रप्रदेश तक ही सीमित रह गया था।

गुप्त कालीन मुद्राओं का ऐतिहासिक एवं कलात्मक दोनों दृष्टियों से महत्व है। गुप्त शासकों द्वारा अपने सिक्कों पर आकर्षण उपाधियों एवं अपनी धार्मिक प्रवृत्तियों का अंकन विशिष्ट ऐतिहासिक महत्व रखता है। क्योंकि इसी आधार पर महत्वपूर्ण ऐतिहासिक निष्कर्ष निकाले गये हैं। चन्द्रगुप्त प्रथम के सिक्कों से ज्ञात होता है कि इसके राज्यकाल में लिच्छवियों से सहायता ली गयी और गुप्त प्रशासन पद्धति में द्वैराज्य का प्रचलन किया गया। समुद्रगुप्त का संगीत प्रिय होना व अश्वमेघ यज्ञ किये जाने के साक्ष्य भी मौद्रिक ही हैं। इसी प्रकार काच व रामगुप्त को मुद्राशास्त्रीय

साक्ष्यों के आधार पर ही गुप्त वंशावली में स्थान दिया गया है। उत्तराकालीन गुप्त शासकों द्वारा मिस्रित एवं हीन धातुओं द्वारा सिक्कों का निर्माण कराया जाना उनकी दयनीय आर्थिक स्थिति की ओर संकेत करता है।

चन्द्रगुप्त प्रथम की मुद्रायें 'भरतपुर' के बयाना से तथा उत्तर प्रदेश के कई स्थानों से प्राप्त हुई हैं। सिक्कों के दाहिनी ओर "श्रीकुमारदेवी" तथा बांयीं ओर "चन्द्रगुप्त" लिखा है। इसके अग्रभाग पर अंकित खड़ा सम्राट रानी को अँगूठी या कोई आभूषण भेंट कर रहा है। सिक्के के पीछे वाले भाग पर हाथ में नाल से युक्त कमल लिये हुए लक्ष्मी का चित्र है और "लिच्छवायः"[31] अंकित है। एलन महोदय इस मुद्रा पर सिंहवाहिनी लक्ष्मी के अंकन व रानी के वंश के उल्लेख और कुषाण शैली की झलक जो कि समुद्रगुप्त के प्रारम्भिक सिक्कों की सामान्य विशेषता थी, के आधार पर मानते हैं कि इस मुद्रा को समुद्रगुप्त ने अपने माता–पिता के विवाह के स्मृति स्वरुप बनवाया था।[32] लेकिन डा० अल्टेकर, एलन ने इन तर्को से सहमत नहीं हैं, उनका कहना है कि इस मुद्रा पर कुषाण शैली का अभाव है। "लिच्छवयः" का अंकन भी राजनैतिक लाभ के लिए किया गया है। समुद्रगुप्त की सभी मुद्राओं पर उसके नाम का अंकन मिलता है जबकि इस मुद्रा पर ऐसा नहीं है। इस प्रकार यह मुद्रा समुद्रगुप्त की न होकर चन्द्रगुप्त प्रथम की है।[33]

गुप्तकालीन मुद्राओं में समुद्रगुप्त की मुद्रायें विशेष महत्व की हैं जो समुद्रगुप्त के राजनैतिक जीवन को छूते हुए उसके व्यक्तिगत जीवन का लेखा–जोखा प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। गरूड़ध्वज शैली,[34] धनुर्धारी शैली,[35] परशुशैली,[36] वीणा शैली, व्याघ्र शैली, अश्वमेध शैली[37] जैसी छः प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन समुद्रगुप्त द्वारा किया

गया। गरूड़ध्वज शैली की मुद्रायें सहारनपुर से लेकर कोलकता तक के क्षेत्रों से प्राप्त हुई हैं। इन मुद्राओं के अग्रभाग पर बांयें हाथ में गरूड़ध्वज और दाहिने हाथ से अग्नि में आहुति देते राजा खड़ा हुआ दिखाया गया है। इसके पृष्ठतल पर सिंहासन पर विराजमान देवी का चित्र है, देवी के बांयें हाथ में कार्नकोपिया तथा दाहिने हाथ में पाश का अंकन है। गरूड़ध्वज शैली की मुद्राओं पर "पराक्रमः श्रीविक्रम" तथा "समरशत वितत विजयो" जैसे लेखों का अंकन भिन्नता पूर्वक किया गया है। स्मिथ का मानना है कि गरूड़ध्वज मुद्राओं पर रोमन प्रभाव की झलक मिलती है लेकिन स्मिथ का यह विचार तर्कसंगत नहीं है क्योंकि प्रयाग प्रशस्ति के विवरणों से यह स्पष्ट होता है कि समुद्रगुप्त के आदेश गरूड़ चिह्न से युक्त रहते थे। बेसनगर के गरूड़स्तम्भ से भी यह निष्कर्ष निकलता है कि इससे पूर्व गरूड़ चिह्न द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में ही भारत में प्रचलन में था। उल्लेखनीय है कि कुषाण कालीन सिक्कों पर त्रिशूल का अंकन हुआ है। यद्यपि इस बात से इनकार करना कठिन है कि ये मुद्रायें कुषाण पुरा प्रकार के अनुकूल बनायी गयीं। दूसरी ओर पंजाब में शासन करने वाले समुद्रगुप्त के अधीनस्थ कुषाण–सामन्तों ने इन मुद्राओं का अनुकरण किया।

समुद्रगुप्त की धनुर्धारी शैली की मुद्रा में राजाकृति का अंकन बाएं हाथ में धनुष तथा दाहिने हाथ में बाण के साथ किया गया है। पृष्ठतल पर "अप्रतिरथ" अंकित है। इसी शैली की कुछ मुद्राओं में बाण लिए राजा को हवन करते दिखाया गया है। राजा का बाण लिए कुषाण वेश–भूषा में यज्ञ करना कुषाण प्रभाव को स्पष्ट कर देता है। समुद्रगुप्त की परशुधारी मुद्राओं के पुरोभाग पर राजा को बांयें हाथ में

परशु लिये दिखाया गया है। राजा तथा चित्रांकित एक वामन के मध्य अर्द्धचन्द्र का अंकन मिलता है। वामन राजा को देख रहा है। इसके पृष्ठतल पर "कृतान्तपरशुभ" लेखांकित है। कृतान्तपरशु शब्द के अंकन से तात्पर्य समुद्रगुप्त की विजेता प्रवृत्ति तथा विजयों की उपलब्धि से है। सम्भवतः वामन पुरुष आकृति में उसका सैनिक उसे आवश्यक सूचनाओं से अवगत करा रहा है। समुद्रगुप्त के अश्वमेध शैली के सिक्कों के पुरोभाग पर अश्व की आकृति है, अश्व के सामने यूप दिखाया गया है। उसके चारों ओर वेदिकाओं का अंकन किया गया है और यूप के ऊपर एक पताका का अंकन किया गया है। पृष्ठतल में राजमहिषी का अंकन है। कलात्मक दृष्टि से अश्वमेध शैली की मुद्राओं का स्थान प्राचीन भारत की मुद्राओं में सर्वाधिक विशिष्ट है। इन सिक्कों को विशिष्टता के आधार पर ऐसा माना गया है कि समुद्रगुप्त ने अश्वमध यज्ञ अपने शासन के अन्तिम वर्षों में किया होगा। ऐसे विशिष्ट कार्य चिरस्मरणीय बनाने के लिए उसने जिन स्वर्ण मुद्राओं को माध्यम बनाया उनको विशिष्ट कलात्मक होना एवं अधिक संख्या में होना नितान्त स्वाभाविक ही था। व्याघ्रनिहन्ता शैली के सिक्के बहुत कम मात्रा में मिले हैं। इनके पुरोभाग पर बांयीं ओर राजा को दर्शाया गया है जिसके पैरों के नीचे व्याघ्र है जिसे वह धनुष से आखेट कर रहा है। पृष्ठतल पर देवी की आकृति है जो मकर पर सवार दिखायी गयी हैं। इन मुद्राओं की विधि–व्यवस्था पूर्णतया भारतीय प्रतीत होती है। मकर पर सवार देवी को स्मिथ महोदय ने वरूणदेव की पत्नी अथवा देवी रति होने की सम्भावना व्यक्त की है। उल्लेखनीय है कि देवी रति का वाहन एक विशेष प्रकार की मछली बताया गया है लेकिन अल्टेकर महोदय मकर पर सवार देवी का तादात्म्य गंगा से स्थापित किया

गया है जिनका वाहन मकर माना गया है। गुप्त कालीन कला में भी गंगा–यमुना का अंकन एक सामान्य बात थी। समुद्रगुप्त की वीणा शैली की मुद्राओं के पुरोभाग पर हाथ में वीणा लिये राजाकृति का अंकन है और पृष्ठतल पर कार्नकोपिया लिए आसन पर विराजमान लक्ष्मी की मूर्ति है। समुद्रगुप्त की संगीत प्रियता को इंगित करने वाले इन सिक्कों में पूर्णतया मौलिकता के दर्शन होते हैं। इन सिक्कों पर कहीं–कहीं पर 'सि' शब्द का अंकन मिलता है जिसका तात्पर्य किसी महत्वपूर्ण उपलब्धि अथवा सिद्ध से है। इसी आधार पर अल्टेकर ने अपना निष्कर्ष देते हुए कहा है कि अश्वमेध शैली के सिक्के तथा वीणा शैली के सिक्के अश्वमेधयज्ञ के समय साथ–साथ जारी किये गये। उल्लेखनीय है कि वैदिक कालीन ग्रन्थ भी यही दर्शाते हैं कि अश्वमेधयज्ञ के अवसर पर वीणावादन होता था। कुछ मुद्राये "टांडा तथा बयाना" की निधि से प्राप्त हुई हैं। जिनके पुरोभाग पर राजा बांयीं ओर खड़ा है बायें हाथ में चक्रध्वज है तथा दायें हाथ में वेदिका पर आहुति देता हुआ यज्ञकर्ता के रुप में अंकित है। पुरोभाग पर मुद्रालेख "काचोगामवजित्य कर्मभिरुत्तमै–दिवं जयति" अंकित है। पृष्ठभाग में बायें हाथ में एक फूल लिए एक देवी का अंकन है इसी भाग में "सर्वराजोच्छेता" लिखा है। इन मुद्राओं की निर्माण एवं लेखांकन शैली पूर्णरूपेण अन्य गुप्त शासकों के सदृश्य है। इसके अतिरिक्त यह मुद्रायें केवल गुप्त मुद्रा निधियों से ही प्राप्त हुई हैं। इसी आधार पर "काच" को गुप्त वंशावली में रखते हुए समुद्रगुप्त के बाद का शासक स्वीकार किया गया है। रैप्सन[38] तथा हेरास[39] का कथन है कि समुद्रगुप्त को अपने भाई काच से गृह युद्ध करना पड़ा था जो प्रयाग प्रशस्ति के श्लोक 5 वे 6 में अंकित है। मालवा क्षेत्र से डॉ० पी० एल० गुप्ता को कुछ ताम्र मुद्रायें प्राप्त हुई हैं जिनके

पुरोभाग पर बिन्दु परिधि के तहत सिंहाकृति का अंकन है। पृष्ठभाग पर अर्द्धचन्द्र तथा ब्राह्मी लिपि में शासक का नाम अंशतः अंकित है। इन मुद्राओं को तौल, अक्षर योजना तथा पृष्ठतल के प्रतीकों के आधार पर चन्द्रगुप्त द्वितीय की मुद्राओं के समरूप पाया जाता है। डॉ० पी० एल० गुप्ता तथा डॉ० अल्टेकर[40] ने अपने अध्ययनों के बाद अपना निष्कर्ष देते हुए कहा है कि यह मुद्रायें रामगुप्त की हैं जो चन्द्रगुप्त द्वितीय से पहले का शासक था। कृष्णदत्त वाजपेयी को एरण से कुछ ताम्र मुद्रायें प्राप्त हुई हैं जिनका प्रकाशन "जर्नल आफ न्यूमेसमेटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया 1961" में किया गया था। एरण से प्राप्त इन मुद्राओं पर 'राम', 'रामगु", 'गुप्त', 'मगुप्त', 'गरूड़' आदि का अंकन पी० एल० गुप्ता तथा अल्टेकर के मतों को बल प्रदान करता है। रामगुप्त चन्द्रगुप्त द्वितीय का ही अग्रज था।[41]

प्राचीन भारत में सर्वाधिक सोने के सिक्कों का निर्माण चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा करवाया गया। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने मुद्रा निर्माण में अपने पिता समुद्रगुप्त के मुद्रा निर्माण आदर्शों को महत्वपूर्ण स्थान तो दिया ही साथ–साथ अपने निजी आदर्शों पर भी मुद्रा निर्माण करवाया। अश्वारोही और छत्र शैली[42] के सिक्के चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल से सम्बन्धित अभिनव सिक्के माने जा सकते हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय के अश्वारोही[43] प्रकार के सिक्के कुमारगुप्त के शासन काल में भी अत्याधिक लोकप्रिय हुए। चन्द्रगुप्त द्वितीय की मुद्रा नीति की यह विशेषता रही कि जिन शैली के सिक्कों का प्रचलन समुद्रगुप्त के काल में अधिक था, वे इसके शासन काल में अधिक प्रचलित नहीं कराये गये। जैसे ध्वजाधारी शैली के सिक्कों का प्रचलन समुद्रगुप्त के समय में अधिक था लेकिन चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में इनकी संख्या बहुत कम थी।

इसके अतिरिक्त समुद्रगुप्त के समय में जिन सिक्कों का प्रचलन कम था, चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में उनको अधिक महत्व दिया गया। धनुर्धारी शैली के सिक्कों को इसका उदाहरण माना जा सकता है। बयाना निधि की 983 मुद्राओं में 798 धनुर्धारी शैली की है।[44] चन्द्रगुप्त द्वितीय के सिंहनिहन्ता व पर्यंक शैली के सिक्कों को क्रमशः समुद्रगुप्त के व्याघ्रनिहन्ता तथा वीणा शैली का परिवर्तित रुप माना जा सकता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय का ही पर्यंक पर स्थित राजा–राजमहिषी शैली का एक सिक्का मिला है जिस पर अंकित लेख अस्पष्ट है। हार्नले इस लेख को "प्रवीरःगुप्तः" पढ़ते हुए इस सिक्के को चन्द्रगुप्त प्रथम का होने की बात कही है। जबकि अल्टेकर ने इस लेख को "श्रीचन्द्रगुप्तः" लिखा गया मानते हैं। उल्लेखनीय है कि इस सिक्के के पृष्ठतल पर "श्रीविक्रमः" लेख का अंकन मिलता है जो चन्द्रगुप्त द्वितीय का ही द्योतक माना गया है।[45] पंजाब के हरिपुर नामक स्थान से एक विशिष्ट शैली का ध्वजाधारी प्रकार का सिक्का प्राप्त हुआ है जिसके पुरोभाग पर राजा को यज्ञीय वेदी पर हवन करते हुए अंकित किया गया है, वेदी के ऊपर त्रिशूल बना है। राजा की आकृति के पास "चन्द्र" तथा "गुप्त" शब्दों का अंकन किया गया है किन्तु दूसरे शब्द का केवल 'प' अक्षर ही स्पष्ट है। स्मिथ ने इसे "शाक" पढ़ा था। अनुमानतः इस सिक्के के निर्माता "शाक" चन्द्रगुप्त द्वितीय के अधीनस्थ शासक रहे होगें। डॉ० अल्टेकर एवं पी० एल० गुप्ता ने चन्द्रगुप्त द्वितीय का ही सिक्का माना है।[46]

प्राचीन भारतीय मुद्रा प्रणाली के अन्तर्गत यह आवश्यक परम्परा सी बन गयी थी कि विजयी शासक अपने द्वारा किये गये विजित प्रदेशों में उन्हीं धातुओं से मुद्रा निर्माण करवाया, जिन धातुओं का प्रचलन उस विजित प्रदेश में था, वहां के निवासी

उस धातु से भली भांति परचित थे। गुजरात, काठियावाड़, मालवा आदि प्रदेशों पर पश्चिमी क्षत्रपों का अधिकार था उन्होंने इन क्षेत्रों में चाँदी के सिक्के जारी किये थे जब चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इन क्षेत्रों को जीता तो उसने भी उनके सिक्कों की अनुकृति में चाँदी के सिक्के जारी किये।[47] यद्यपि इन सिक्कों का प्रचलन क्षेत्र पश्चिमी भारत ही था लेकिन अपवाद स्वरूप इनके दो सिक्के क्रमशः बिहार के सुल्तानगंज तथा उत्तर प्रदेश के अयोध्या नामक स्थलों से मिले हैं। इन स्थानों को प्रयोक्तृ स्थान नहीं माना जा सकता। उल्लेखनीय है कि कुमारगुप्त प्रथम के शासन काल तक रजत मुद्रायें पश्चिमी भारत तक ही सीमित न रहीं, इन मुद्राओं को साम्राज्य के अन्य भागों में प्रचलित करवाकर गुप्त मुद्रा नीति में इन्हें समुचित स्थान दिया गया।

यदि गुप्त कालीन ताम्र सिक्कों का उल्लेख किया जाय तो रामगुप्त चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमारगुप्त प्रथम के ही नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने ताँबे के सिक्कों को जारी करवाया यद्यपि ताँबे के सिक्के अन्य धातुओं की अपेक्षा कम मात्रा में मिले हैं। ताम्र सिक्के के प्रचलन में कमी के कारणों को बताते हुए अल्टेकर कहते हैं कि गुप्तकाल में साधारण वस्तुओं के क्रय–विक्रय प्रक्रिया में विनिमय को माध्यम बनाया जाता रहा होगा या कौड़ियों को प्रयोग में लाया जाता रहा होगा। इसी क्रम में फाह्यान के विवरण में पाटलिपुत्र के बाजारों में कौड़ियो के प्रयोग का उल्लेख महत्वपूर्ण है।

गुप्त कालीन मुद्रा प्रणाली के विकास में कुमार गुप्तप्रथम के शासन काल का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इस काल के अन्तर्गत मुद्राओं के आकृति अंकन, आकार–प्रकार, लेखादि में सर्वथा नवीनता दिग्दर्शित होती है। यही नहीं कुमार गुप्त

प्रथम ने समुद्रगुप्त के व्याघ्रनिहन्ता शैली, अश्वमेध शैली तथा वीणाधारी शैली के सिक्कों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जिन्हें चन्द्रगुप्त द्वितीय ने प्रोत्साहित नहीं किया था। उल्लेखनीय है कि कुमारगुप्त प्रथम का काल चन्द्रगुप्त द्वितीय के धनुर्धारी, छत्र व अश्वारोही शैली की मुद्राओं से भी प्रभावित था। इसके अतिरिक्त कुमारगुप्त प्रथम ने कार्तिकेय, खडगधारी, हस्ति आरोही और सिंहनिहन्ता तथा प्रतिघात शैली की नवीन मुद्राओं का भी निर्माण करवाया।[48] स्कन्दगुप्त का काल राजनैतिक अस्थिरता का काल था फिर भी स्कन्दगुप्त ने धनुर्धारी, राजा–लक्ष्मी, छत्र व अश्वारोही शैली की मुद्राओं को जारी करवाया। स्मिथ ने राजा–लक्ष्मी शैली की मुद्राओं पर अंकित स्त्री को रानी का चित्र बतलाते हुए राजा–रानी शैली की संज्ञा प्रदान की थी। लेकिन स्त्री राजा को कोई वस्तु भेंट कर रही है, दाता ग्रहीता से श्रेष्ठ माना जाता है, अतः इसे लक्ष्मी का चित्र स्वीकार करना तर्कसंगत प्रतीत होता है, ऐसा ही तर्क अल्टेकर तथा एलन का भी है। स्कन्दगुप्त द्वारा जारी की गयी रजत मुद्रायें भी प्राप्त हुई हैं, अल्टेकर ने स्कन्दगुप्त की पश्चिमी मुद्राओं को गरूड़ शैली, नन्दी शैली तथा वेदी शैली में वर्गीकृत किया है। वेदी शैली की मुद्राएं केवल मालवा में प्रचलित थी।[49] स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियों में केवल बुद्धगुप्त ने रजत सिक्कों का प्रयोग जारी रखा, इसके पूर्व पुरुगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय के सन्दर्भ में रजत सिक्कों का पूर्णतया अभाव है।

छठी शताब्दी ई० के मध्य (लगभग 550 ई०) शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया, अनेक स्थानीय सामन्तों एवं शासकों ने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी। लगभग इसी समय पश्चिमी बंगाल के कुछ सामन्त शासकों ने अपने–अपने

नाम के स्वर्ण सिक्के जारी किये लेकिन इनके द्वारा जारी स्वर्ण सिक्कों में अन्य धातुओं का भी मिश्रण था। इन सिक्कों पर "समाचार देव" तथा 'जयगुप्त' नामक सामन्त शासकों का नाम अंकित है। वर्धनवंश के शासक "प्रभाकर वर्धन" के सिक्के "प्रतापशील" लेखाकंन के साथ प्राप्त हुए हैं। 'मौखरि शासकों' ने गुप्तों की रजत मुद्राओं की अनुकृति पर ही मुद्रायें जारी की। "पंखयुक्त मयूर" का अंकन गुप्त, हूण तथा मौखरि तीनों राजवंशो के द्वारा जारी किये गये सिक्कों पर मिलता है। "पंखयुक्त मयूर" शैली के सिक्के मौखरि नरेशों में ईशानवर्मन, सर्ववर्मन तथा अवन्तिवर्मन आदि द्वारा जारी किये गये।[50]

इस प्रकार भारतीय मुद्रा प्रणाली का इतिहास विनिमय के मौद्रिक स्वरूप को छूता हुआ शैशव कालीन आहत सिक्कों की ओर बढ़ा, इसी बीच देशी–विधि से बनाये गये इन आहत सिक्कों को आने वाली विदेशी पद्धतियों एवं परम्पराओं ने सन्दर्भित एवं प्रभावित करके भारतीय मुद्रा प्रणाली को उस स्थान पर ला खड़ा किया जहाँ किसी प्रतिष्ठित मुद्रा प्रणाली को स्थान दिया जाता है। अब इन सिक्कों के अंकित प्रतीक चिह्नों के स्थान पर अथवा साथ–साथ लेखों तथा तिथियों का भी अंकन प्राप्त होने लगा। इस तरह भारतीय मुद्रा प्रणाली का इतिहास अपने अन्तःकरण में अनेकों उतार–चढ़ाव लिये हुए है जिसमें विदेशी प्रेरणाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

प्राचीन भारती मुद्रा प्रणाली पर विविध महत्वपूर्ण अध्ययन किये जा चुके हैं। लेकिन अध्ययन के लिए अपनायी गयी पद्धतियां व लक्ष्य पर्याप्त नहीं माने जा सकते क्योंकि प्राचीन भारतीय मुद्रा प्रणाली को एक नई दिशा देने वाले कई ऐसे बिन्दु हैं जिन्हें विद्वानों ने अपने अध्ययन का मुख्य विषय नहीं बनाया है जैसे– भारतीय

सिक्कों के निर्माण एवं उनकी परम्पराओं तथा प्राचीन भारत में प्रचलित मौद्रिक विनिमय प्रणालियों में देशी एवं विदेशी तत्वों की भूमिकाओं का समुचित अध्ययन अभी तक नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त मुद्रा निर्माण के क्षेत्र में आने वाले प्राचीन भारतीय उतार–चढ़ाओं में किस सीमा तक देशी एवं विदेशी प्रेरणायें कार्यरत थी, इस प्रश्न का भी क्रमबद्ध विवेचन नहीं किया गया है। अतः हम यह कहेंगे कि प्राचीन भारतीय मुद्रा प्रणाली के अध्ययन के लिए अपनायी गयी पद्धतियों में भारतीय मुद्रा प्रणाली में देशी–विदेशी तत्वों की क्रिया–प्रतिक्रिया तथा पारस्परिक सामंजस्य के अध्ययन को समुचित स्थान नहीं दिया गया है। प्राचीन भारत में मुद्रा का उद्भव, उसकी प्राचीनता और उसके विकास का इतिहास जैसे विषय ही विद्वानों की चिन्ता के मुख्य विषय रहे हैं। इसके अतिरिक्त सिक्कों के निर्माण प्रक्रिया, उन पर प्रतीक चिह्न, शासकों एवं देवी–देवताओं की आकृतियों का अध्ययन तथा तिथियों और उनमें प्रयोग में लायी गयी कीमती धातुओं की मात्रा और सामान्य धातु से उनके मिश्रण का अनुपात आदि विषयों पर विभिन्न विद्वानों के द्वारा किये गये अध्ययनों में पर्याप्त ध्यान दिया गया है। जैसे दुर्गाप्रसाद, पी०एल० गुप्ता तथा वाल्श आदि विद्वानों ने भारतीय सिक्कों मे प्रयुक्त प्रतीक चिह्नों का गहन अध्ययन किया है। दुर्गाप्रसाद ने 152 विविध आहत सिक्कों का वर्गीकरण किया है, जिसमें कुल पांच प्रतीक चिह्नों का अंकन मिलता है। कुछ आहत सिक्कों में चार प्रतीक चिह्न उभयनिष्ठ हैं तो कुछ में तीन प्रतीक चिह्न उभयनिष्ठ हैं। लगभग सभी सिक्कों में "सूर्य" का अंकन मिलता है। विद्वानों ने इन "सूर्य" चिह्न वाले सिक्कों को प्रथम वर्ग में रखा है। जिन सिक्कों पर "पडरचक्र" का चिह्न है उन्हें द्वितीय वर्ग में रखने का सुझाव पी०एल० गुप्ता ने दिया

है। तृतीय वर्ग में उन सिक्कों को रखा गया है जिनके आपसी सादृश्य स्पष्ट होती है, जैसे "पशु चिह्न धारण करने वाले सभी सिक्कों को वर्ग विशेष के अन्तर्गत रखा गया है" इसी प्रकार 'पर्वत चिह्न' को धारण करने वाले सिक्कों को ऐसे ही वर्ग में रखा गया है। पी०एल० गुप्ता के अनुसार अपवाद स्परूप प्रतीय चिह्न के रूप में "वृषभ" का अंकन प्राप्त होती है ऐसे सिक्कों को विद्वानों ने चौथे वर्ग में रखा है। पाँचवा प्रतीक चिह्न समूह सर्वाधिक संख्या में पाया गया है। इस वर्ग के अन्तर्गत "अमरवती मुद्रानिधि" से पी०एल० गुप्ता को '71' चिह्न मिले हैं। ये प्रतीक चिह्न विविध प्रकार, विभिन्न वर्ग और विभिन्न समूह के सिक्कों पर पाये गये हैं। मुद्रा शास्त्रियों को ऐसे सिक्के भी प्राप्त हुए हैं जिनके दोनों भागों पर पाँच चिह्नों वाला समूह अंकित है, प्रथम भाग का अंकन दूसरे भाग की अपेक्षा घिसा हुआ व पुराना प्रतीत होता है। विद्वानों का तर्क है कि यह वे सिक्के हैं जिनको दो बार निर्गत किया गया था। सर्वप्रथम वाल्श को इस प्रकार के पुनराहत सिक्के "भीर के टीले" से मिले हैं। इसी शैली के दो सिक्के रायपुर निधि से तथा 96 सिक्के अमरावती निधि से पी०एल० गुप्ता को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार सिक्कों पर अंकित प्रतीक चिह्नों के अध्ययन का एक विधा के रूप में मुद्राशास्त्रियों ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

सिक्कों के अध्ययन की दूसरी विधा राजनीतिक इतिहास के निर्माण में सिक्कों से प्राप्त सूचनाओं के उपयोग की रही है जिस पर बहुत काम हुआ है। पांचाल के मित्र शासकों और मालव तथा यौधेय आदि गणराज्यों का पूरा इतिहास उनके सिक्कों के आधार पर ही लिखा गया है। गुप्त सम्राटों का इतिहास अधिकतर उनके अभिलेखों के आधार पर लिखा गया है, लेकिन उनके द्वारा जारी किय गये सिक्कों से उनकी

उपलब्धियों की महत्वपूर्ण सूचना मिलती है। सिक्के यदि बड़ी मात्रा में एक स्थान से मिले तो विद्वानों द्वारा यह सहज ही निर्णय ने लिया जाता है कि सिक्कों का प्राप्ति स्थल उस राजा के शासित प्रदेश का हिस्सा था। यदि सिक्कों पर तिथि का अंकन हो तो उसके शासन काल का निर्धारण किया जाता है। गुप्त कालीन सिक्कों से गुप्त वंशीय इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। जैसे समुद्रगुप्त के अश्वमेध शैली के सिक्कों से यह स्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है कि उसने अपने शासन काल में राजनीतिक प्रतिष्ठा का प्रतीक अश्वमेध यज्ञ को सम्पन्न किया था। काच तथा रामगुप्त जैसे शासकों के द्वारा जारी किये गये सिक्कों के आधार पर ही इन्हें गुप्त वंशावली में स्थान प्रदान किया गया है। इसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय की पश्चिमी भारत की शक विजय भी उसकी रजत मुद्राओं द्वारा ही प्रतिष्ठित की गयी है।

इसी प्रकार आर्थिक इतिहास के निर्माण में सिक्कों की भूमिका को भी विद्वानों द्वारा विवेचित किया गया है। सिक्कों का बहुतायत से मिलना सिक्कों का ह्रास हो जाना, भारतीय आर्थिक इतिहास के युगों की विभाजक रेखा के रुप में भी एक महत्वपूर्ण कारक माना गया है। उत्तर कालीन गुप्त शासकों जैसे– बुद्धगुप्त, नरसिंहगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय, विष्णुगुप्त तथा वैन्यगुप्त आदि ने धनुर्धारी शैली के सिक्के जारी किये जिसमें सोने की अपेक्षा खोट की मात्रा अधिक थी जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि तत्कालीन गुप्त शासकों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। लेकिन दुर्भाग्यवश मुद्राशास्त्र का प्रयोग प्रमुख रूप से आर्थिक इतिहास के गठन के लिए उतना नहीं किया गया है जितना कि राजनीतिक इतिहास के निर्माण के लिए। सिक्कों का भिन्न–भिन्न धातुओं में पाया जाना, उनकी प्रमुखता या अनुपस्थिति

आदि ऐसे तथ्य हैं जो प्राचीन भारतीय आर्थिक इतिहास को एक नवीन दिशा दे सकते हैं। यद्यपि इसी लक्ष्य की प्राप्ति के निमित्त डी०डी० कोशाम्बी ने आहत मुद्राओं का जो अध्ययन प्रस्तुत किया है वह अत्यन्त महत्व का है।

सिक्कों के अध्ययन की महत्वपूर्ण विधा इतिहास के धार्मिक पहलुओं की जानकारी की रही है। सिक्कों के अध्ययन का उपयोग धार्मिक इतिहास की दृष्टि से जे०एन० बनर्जी जैसे विद्वानों द्वारा अत्यन्त महत्वपूर्ण ढंग से किया गया है। इस अध्ययन के अन्तर्गत सिक्कों के पृष्ठभाग पर जिस देवता की आकृति बनी हो उससे तत्कालीन शासक की धार्मिक प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जाता है जैसे कुषाण शासक वासुदेव की रजत मुद्राओं पर मुख्यता "शिव" तथा "नन्दी" का अंकन मिलता है। मुद्राओं के पुरोभाग पर कनिष्क की भाँति राजा हवनकुण्ड में आहुति देते हुए वामाभिमुख खड़ा है, बाएं हाथ में त्रिशूल है। यह अंकन कुषाण शासक के शैव सम्बद्धता का प्रतीक माना जा सकता है। इसी प्रकार इसके पूर्व के शासक कनिष्क के सिक्कों पर हिन्दू देवी–देवताओं के अतिरिक्त महात्मा बुद्ध के अंकन तथा हुविष्क के सिक्कों पर गणेश का अंकन, इन शासकों का हिन्दू धर्म की ओर झुकाव का स्पष्ट संकेत देते हैं। समद्रगुप्त के कुछ सिक्कों पर "परमभागत" का अंकन तथा कुमारगुप्त प्रथम के कुछ सिक्कों पर "कार्तिकेय" तथा "मयूर" का अंकन आदि ऐसे साक्ष्यों को मुद्रा शास्त्रियों ने उक्त शासकों के व्यक्तिगत धार्मिक प्रवृत्तियों के साक्ष्य माने हैं। मुद्राशास्त्रियों का मानना है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय की मुद्रानीति में उसके धार्मिक विश्वास और वैयक्तिक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। व्यक्तिगत रूप में चन्द्रगुप्त द्वितीय वैष्णव था। चूँकि वैष्णव धर्म भक्ति प्रधान था जिसमें याज्ञिक अनुष्ठानों के

लिए कोई स्थान न था, इसी कारण चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अश्वमेध यज्ञ का सम्पादन नहीं किया, इसके द्वारा अश्वमेघ शैली के सिक्कों को न जारी किया जाना इन्हीं तथ्यों का तार्किक परिणाम था।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. शतपत ब्राह्मण – 3.3, 3.6 – "अमृतं हि एतत् अमृतेन क्रीणाति यत सोमं हिरण्येन"।
2. तैत्तिरीय ब्राह्मण – 1.7.6.3, 8.1 – "अमृतं हिरण्सम"।
3. ऋग्वेद – प्ट, 24.10 – "क इमं दशाभिर्मय इन्द्रं क्रीणति धेनुभिः"।
4. ऋग्वेद – ८. 7.2, ष्. 15.9, प्ट दृ 10.6।
5. अथर्ववेद – प्ट . 22.2।
6. भगवान सिंह – हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, पृष्ठ–309
7. तैत्तिरीय ब्राह्मण – 11.3.6.7।
8. रामशरण शर्मा – प्रारम्भिक भारत का आर्थिक एवं सामाजिक इतिहास, पृष्ठ–25।
9. अष्टाध्यायी –5.2, 119।
10. अर्थशास्त्र अनुवादित– शामाशास्त्री, पृष्ठ–95, 96।
11. उपरिवत्।
12. एच० हार्टेल – सम रिजल्ट आफ द एक्सकेवेसन्स ऐट सोंख, जर्मन स्कालर्स आन इन्डिया, प नई दिल्ली, 1926, पृष्ठ–87।
13. रामशरण शर्मा – प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृष्ठ–165,166।
14. डी.सी. सरकार – सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स, पृष्ठ–95–97।
15. कृष्णमोहन श्रीमाली – हिस्ट्री ऑफ पाचांल नई दिल्ली–1983।
16. जॉन एलन – कैटलॉग आफ एन्शियन्ट इन्डियन क्वाइन्स इन द ब्रिटिश म्यूजियम।
17. कनिंघम –क्वाइन्स आफ द शकाज, पृष्ठ–26।

18. पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृष्ठ–459।

19. महाभारत, आदिपर्व, पृष्ठ– 95, 76।

20. डी० सी० सरकार– ज्यॉग्राफी ऑफ एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इन्डिया, पृष्ठ– 22।

21. जॉन एलन – सी० सी० बी० एम० रोमन लिपि में, पृष्ठ–103।

22. पुराणम, जिल्द 7, संख्या 1 (जनवरी 1955), पृष्ठ– 187।

23. वायु पुराण– 19, 97, 98।

24. आर० सी० मजूमदार– वाकाटक गुप्त ऐज, पृष्ठ– 131।

25. बेलालाहिड़ी– जे० एन० एस० आई० ग्गप्प पार्ट प, पृष्ठ–36।

26. बी.एम.सी. च्स.प, पृष्ठ–68,69,70।
जे.बी.बी.आर.ए.एस. ग्गग्प्ए पृष्ठ–223–43।
जे.एन.एस.आई. ग्टप्प्ए पृष्ठ–99, प्ए पृष्ठ–3।

27. जे.डी.एच.सी. प्प्ए पृष्ठ–81, 83, 84, 86, 88।
आई.एम.सी. – ग्गप्प्ए पृष्ठ–18।
बी.एम.सी. – पृष्ठ–21।

28. बी.एम.सी. – पृष्ठ–22।

29. जे.आर.ए.एस.बी.एन.एन. –1934, पृष्ठ–61,62।

30. सी.ए.आई. – च्सण ग्प्प्प 14।
बी.एम.सी. – पृष्ठ– 32,33।

31. अजीत रायजादा – भारतीय सिक्कों का इतिहास, पृष्ठ– 85–86।

32. जॉन एलन– कैटलॉग आफ द क्वाइन्स आफ द गुप्त डायनेस्टी, 1914 (इन द ब्रिटिश म्यूजियम), पृष्ठ– 114, 118।

33. ए० एस० अल्टेकर– क्वाइनेज ऑफ गुप्ता एम्पायर 1957, पृष्ठ– 26, 28।
34. उपरिवत्– पृष्ठ–39, "गरूड़ शैली की मुद्रायें" सर्व प्रथम समुद्र गुप्त ने ही चलायी।

35. जॉन एलन– कैटलॉग आफ द क्वाइन्स आफ द गुप्त डायनेस्टी, 1914 (इन द ब्रिटिश म्यूजियम), पृष्ठ– 6–11।

36. उपरिवत् – पृष्ठ– 12–14।

37. उपरिवत् – पृष्ठ– 21–23।

38. रैप्सन– जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी 1893, पृष्ठ–81।

39. हेरास– ऐनाल्स ऑफ भण्डाकर ओरियेन्टल रिसर्च इस्टीट्यूट, जिल्द 4, पृष्ठ– 83।

40. जर्नल ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, जिल्द 14, पृष्ठ– 228, 253 तथा जिल्द 15, पृष्ठ– 135–141।

41. के० डी० वाजपेयी– जर्नल ऑफ न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया, खण्ड 23, पृष्ठ–340।

42. जॉन एलन– कैटलॉग आफ द क्वाइन्स आफ द गुप्त डायनेस्टी, 1914 (इन द ब्रिटिश म्यूजियम), पृष्ठ– 34–37।

43. उपरिवत् – पृष्ठ – 45–49।

44. ए० एस० अल्टेकर– गुप्तकालीन मुद्राएँ, पृष्ठ–61।

45. ए० एस० अल्टेकर– क्वाइनेज ऑफ द गुप्ता एम्पायर, पृष्ठ–138।

46. गुप्त कालीन मुद्रायें– पृष्ठ– 99।

47. आर० सी० मजूमदार– वाकाटक गुप्त ऐज, पृष्ठ– 63।

48. ए० एस० अल्टेकर– क्वाइनेज ऑफ द गुप्ता एम्पायर, पृष्ठ– 167–197।

49. गुप्त कालीन मुद्राएँ, पृष्ठ– 178; तुलनीय – द क्वाइनेज ऑफ द गुप्ता एम्पायर, पृष्ठ– 250, तथा आगे।

50. भितौरा की मुद्राएँ– उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले के भितौरा नामक स्थान से मौखरियो के सिक्के का ढेर मिला है।